समकालीन हिन्दी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में सामाजिक परिवर्तन के स्वर

डॉ0 गुड्डी
प्रवक्ता हिन्दी विभाग
गढ़वाल विश्व विद्यालय टिहरी परिसर

सामान्य तौर पर सामाजिक परिवर्तन सामाजिक सगंठन अथवा सामाजिक संरचना एवं उसके प्रकार्यों में घटित होने वाले रूपान्तरणों को इंगित करता है। इसी बात को समाजिक शास्त्रियों ने परिभाषित कर दिया है। सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में विद्धानों के अलग-अलग मत हैं।

किंग्सले डेविड के अनुसार - ''सामाजिक परिवर्तन से हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को समझते है जो सामाजिक संगठन अर्थात समाज के ढांचे और प्रकार्यों में घटित होते हैं।[1] अपनी वैविध्यपूर्ण सामाजिक संरचना के कारण भारत को उपमहाद्वीप की संज्ञा दी गई है। यहाँ अनेक भाषाएं, जातियां, धर्म सम्प्रदाय, राजनीतिक विचारणधाराएं आर्थिक दर्शन तथा समाजिक सम्बन्ध देखने में आते है किन्तुं इस अनेकता के अन्दर एकता की अन्तःसलिला प्रवाहित होती है । अतः सामाजिक परिवर्तन के कारणों की गवेषणा की जा सकती है। समसामयिक भारत का ताना-बाना सहस्त्र शताब्दियों से प्राचीन है। किन्तु परिस्थितिवश यह निरन्तर परिवर्तनशील रहा है। यहां संक्षेप में परिवर्तन के कारणों पर विचार-विमर्श किया जा रहा है।

इसमें सर्वप्रथम सामाजिक परिवर्तन का जो कारण है वह है पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव। प्रायः डेढ़ शताब्दियों तक भारत पर पाश्चात्य लोगों का शासन स्थापित रहा है। विजित सभ्यता विजेता की सभ्यता से निश्चित प्रभावित होती है, अतः भारतीय समाज के खान-पान, पहनावे, पोषाक, भवन निर्माण कला पर स्पष्टतः पाश्चात्य प्रभाव के दर्शन होते है। यहां तक कि सहित्य संगीत और कलाएँ भी पश्चिम से अनुप्राणित हुई हैं, तथा जेा भारतीय संगीत अपनी गहराई के लिए विश्व-विख्यात था आज पश्चिम की नकल मे तल्लीन है। स्वतंत्रता पूर्व यह प्रक्रिया धीमी थी, किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् पाश्चात्य प्रभाव तीव्र गति से प्रसारित हुआ है। आज हम भूमण्डलीकरण की बात करने लगें हैं। सारी दुनिया सिमटती जा रही है। पृथ्वी के एक कोने की हल-चल दूसरे कोने पर साफ सुनाई पड़ती है किन्तु पाश्चात्य वर्चस्व के आगे भारतीय समाज अपनी दृढता को भूल, शीघ्रता से आगे परिवर्तन होता जा रहा है।

समाजिक परिवर्तन का दूसरा कारण संस्कृतीकरण है। ''संस्कृतीकरण वह प्रकिया है जिसके द्वारा कोई निम्नस्तरीय हिन्दू जातियॉ या कोई जन-जातियां अथवा कोई समूह किसी उच्च स्तरीय और प्रायः द्विज जाति का अनुकरण करता हुआ अपने रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा और जीवन-पद्धति को बदलता है। आमतौर पर ऐसे परिवर्तनों के बाद वह जाति अपने परम्परागत जातीय स्थान से ऊँचे स्थान का दावा करने लगती हैं। साधारणतः बहुत दिनों तक और वास्तव में एक दो पीढ़ियों का दावा किए जाने के बाद उच्च स्थान की स्वीकृति मिलती है।[2]

संस्कृतीकरण के फलस्वरूप भारतीय समाज में बहुत परिवर्तन हुए है। जाति के दृढ़ बन्धन शिथिल हुए हैं। निम्न जातियों में उच्चता की भावना आई है, उनमें स्वच्छता एवं सांस्कृतिक चेतना का जन्म हुआ है। विचारों, मूल्यों एवं जीवन पद्धति में बदलाव आया है उनमें हीनत की भावना

का लोप हो गया है। सामान्यतः संस्कृतीकरण के साथ-साथ और प्रायः उसके परिणामस्वरूप सम्बद्ध जाति ऊपर की ओर गतिशील होती हैं, पर गतिशीलता संस्कृतीकरण के बिना अथवा गतिशीलता के बिना संस्कृतीकरण भी असम्भव है। संस्कृतीकरण हिन्दू जातियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि जनजाति और अर्ध जनजाति समूहों में भी होता है जैसे पश्चिमी भारत के भीलों में तथा मध्य-भारत के गोडों और ओरावों में एवं हिमालय की पहाड़ियों में भी, इसके परिणाम देखे गये हैं। जिस जन-जाति में परिवर्तन होता है वह एक जाति और हिन्दू होने का दावा करने लगती है। पारस्परिक व्यवस्था में हिन्दू होने का एकमात्र उपाय किसी जाति में शामिल होना था और गतिशीलता की इकाई आमतौर पर व्यक्ति या परिवार नहीं एक समूह हुआ करता है।

कुल मिलाकर यह कहना सही होगा कि ब्राह्मणों की अपेक्षा क्षत्रिय, और शूद्र वर्णो की संस्कृति में स्थानीय अंचल के तत्व कहीं अधिक होगें और इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि देश विभिन्न भागों में क्षत्रिय और वैश्य होने का दावा करने वाली जातियों में परस्पर गहरी विभिन्नताएं मौजूद हैं। वास्तव में जबकि भारत के प्रत्येक अंचल मे इस बारे में तो कुछ सहमति मिलती है कि कौन ब्राह्मण है और कौन अछूत, क्षत्रिय और वैश्यों के बारे में ऐसी सर्वसहमति नहीं मिलती। क्षत्रिय और वैश्य के दर्जे का दावा वे सब समूह करते हैं जिनकी क्रमशः सैनिक कार्य और व्यवसाय की परम्पराएं रही हैं। देश के विभिन्न भागों के सभी क्षत्रिय और वैश्यों में अपना-अपना सामान्य कर्मकाण्ड नहीं है। उनमें बहुतों के वे सब संस्कार नहीं होते जो द्विज वर्णो के लिए आवश्यक समझे जाते हैं। इसी प्रकार यह सम्भव है कि शूद्रों की इस व्यापक श्रेणी में कुछ जातियों की जीवन शैली का अत्यधिक संस्कृतीकरण हुआ हो अथवा न हुआ हो, किसान प्रभु जातियां ही अनुकरण के स्थानीय आदर्श प्रस्तुत करती हैं। जैसा कि पेाकॉक और सिंगर ने कहा है कि यही क्षेत्रीय (और अन्य) आदर्शों का माध्यम बनती हैं।

1- सामाजिक संगठन में परिवर्तन

भारतीय समाज में गठन को विनियंत्रित करने वाले प्रमुख तत्वों में विवाह, पारिवारिक संरचना, जातिप्रथा तथा सम्बन्ध निर्धारण आदि उल्लेखनीय है। स्वातंत्रयोत्तर काल में इसमें पूर्व की अपेक्षा बहुत परिवर्तन हुए है उनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से है।

विवाह समाज की एक इकाई है। प्राचीन भारत मे विवाह के लिए शास्त्रों में जो नियम उल्लिखित थे उनसे बाहर जाकर विवाह करना अकल्पनीय था। अपनी ही जाति में निश्चित मानदण्डों के आधार पर विवाह निश्चित होते थे। इसके लिए मनु, याज्ञवल्कय तथा परासर आदि ऋषियों की स्मृतियों को आधार माना जा सकता था अंतर्जातीय विवाह अत्यन्त हेय समझे जाते थे तथा उससे उत्पन्न सन्तान को समाज में निम्न स्थान प्राप्त होता था, परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् पाश्चात्य प्रभावों के कारण तथा नये कानूनों की वजह से इस प्रथा में अनेक परिवर्तन हुए हैं। कम आयु में विवाह कानूनन अपराध बना दिया गया है। अतः कतिपय् अपवादों को छोडकर युवक-युवतियां कम उम्र में शादी करना पसन्द नहीं करते हैं। विवाह में उनकी सम्मति भी आवश्यक समझी जाने लगी है।

परिवार भी प्रत्येक समाज की एक इकाई होती है। भारतीय समाज में संयुक्त परिवारों की प्रथा रही है। जिनमें कई पीढ़ियों के लोग साथ-साथ रहते हैं। यहां परिवार की उपमा एक विशाल बरगद के पेड से दी जाती रही है जो अनेक आंधी तूफानों को झेलता हुआ अविचल खडा सुखद छाया में शीतलता का वितरण करता है, किन्तु स्वतंत्रता के बाद इस स्थिति में पर्याप्त अन्तर लक्षित होता है। समाजशास्त्रियों ने एत्द विषयक अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि:-

संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा है और उनके स्थान पर छोटे परिवारों का प्रचलन बढ़ रहा है, और बच्चों के लालन-पालन की जटिल समस्या सामने आ रही है।

1. नयी पीढ़ी में विस्तृत सम्बन्ध व्यवस्था का ह्रास हो रहा है। विस्तृत व्यवस्था से तात्पर्य मामा, फूफा, चाचा, ताऊ, आदि के साथ सम्बन्ध निर्वाह है। विघटित परिवारों में यह सम्बन्ध शिथिल होते जा रहे हैं।
2. युवतियां विवाह के बाद अपना अलग घर चाहने लगती हैं, जहां उनका एकाधिकार हो और उन पर हुक्म चलाने वाला कोई न हो।
3. महिलाओं का नौकरी करना भी स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध परिवर्तन में एक कारक है। पहले स्त्री-पुरुष की अनुगामिनी हुआ करती थी, किन्तु अब वह सहगामिनी हो गई है।
4. कृष्णा सोबती का कहना है कि- ''स्त्री और पुरुष यदि दोनों ही सक्षम और महत्वकांक्षी हो तो टकराव निश्चित है। चूंकि अब स्त्री का दायरा घर ही नहीं है। अतः व्यापक समझदारी अपेक्षित है।[3]

रचनाकारों ने परिवार को मनुष्य जीवन की सबल और केन्द्रीय धुरी मानकर उस पर बहुत तरह से बहस करते हुए अपने वक्तव्यों को प्रकट किया है। कमलेश बक्शी नौकरी करती मॉ पर परिवार का सन्तुलन बिगड जाने का आरोप लगाते हुए कहती है- 'नौकरी करती माँ बच्चे को पूर्ण ममता देने में असमर्थ, बच्चे में असुरक्षा की भावना व पति-पत्नि अकेले रहना चाहते हैं। दोनों की नौकरी बच्चों की समस्या पाश्चात्य देशों की तरह बेबी सिटर-ब्रेक-डेकेयर खुलने चाहिए, यही महानगरों की बहुत बडी समस्या है।[4]

निष्कर्षतः अगर हम परिवार की इस बदली स्थिति को देखें तो- नगरीकरण, नारी शिक्षा, औद्योगीकरण परिवर्तित आर्थिक परिस्थिति के कारण परिवार में माता-पुत्र, पिता-पुत्र, भाई-भाई भाई-बहिन आदि के सम्बन्धों में परिवर्तन आया है। अधिक उम्र तक पढ़ते रहने के कारण विवाह होते ही पुत्र पिता से अलग रहना चाहता हैं, पिता-पुत्र में तनाव भी बढता है। परिवार में स्त्रियों की स्थिति पहले से अच्छी हुई है। शिक्षित महिला न केवल परिवार की देख-रेख करती है, अपितु वह अपनी सही राह देकर परिस्थितियों की जटिलता को कम करने में सहायक भी होती हैं। छोटे परिवारों के प्रचलन के कारण भाई-भाई के सम्बन्धों में प्रगाढ़ता नहीं रही है। स्वतंत्रता के पश्चात पारिवारिक परिदृष्य बहुत बदल गया है।

अति प्राचीन काल से ही जाति-प्रथा में परिवर्तन के लिए धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलन होते रहे हैं। 2500 वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध ने और तीर्थंकर महावीर ने जाति प्रथा को अनावश्यक बताकर उनका विरोध किया था । व्यक्ति अपने कर्मो से ही छोटा बड़ा होता है, जाति से नहीं। इस प्रकार के उपदेश कई महापुरुषों ने दिए हैं। आधुनिक युग में उन्नसवीं शताब्दी से ही जाति विरोधी आन्दोलन प्रखर होने लगे थे। राजाराममोहन राय, केशवचन्द सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी रामकृष्ण परमहंस आदि ने आचार और साधना को प्रमुख स्थान प्रदान कर, जाति प्रथा के बन्धनों को ढीला कर दिया था। अंग्रेजों ने अपने राज्य में नई कानून व्यवस्था कायम की और कानून की दृष्टि से सबको समान अधिकार दिया।

भारतीय दण्ड संहिता में सभी जातियों के लिए समान व्यवस्था कायम की गई है। छुआ-छूत की समस्या भी धीरे-धीरे कम हो गई और आज अस्पृश्यत एक दण्डनीय अपराध घोषित किया जा चुका है।

स्वतंत्रता के पश्चात यद्यपि जातियों में संघर्ष होते रहे है। जातीय तनाव ने कभी हिंसक रूप धारण किया किन्तु जाति प्रथा धीरे-धीरे

समाप्त होती जा रही है। हाल के वर्षों में राजनीति के अपराधीकरण के कारण कई जातियों ने अपनी-अपनी सेनायें एकत्र कर ली हैं, किन्तु सभ्य लोगों में इनका कोई महत्व नहीं है। शहरों में जातिप्रथा अत्यन्त क्षीण है। स्वतंत्रता के बाद कई मुख्यमंत्री, केन्द्रीय मंत्री तथा अन्य महत्वपूर्ण पदों पर अछूत कही जाने वाली जातियों के लोग आसीन रहे हैं। विगत वर्षों में भारतीय संविधान का सर्वोच्च पद 'राष्ट्रपति पद' अछूत जाति का एक अन्यतम उदाहरण है। अन्य और भी कई पदों पर ऐसे व्यक्ति आसीन हैं। गॉवों में यद्यपि अब भी जाति प्रथा लागू है, किन्तु नगरीय सभ्यता में इनका स्थान गौण हो गया है। अन्तर्जातीय विवाह, अन्तर्जातीय सम्बन्ध, खान-पान आदि सब निःसंकोच भाव से चल रहे हैं। सभी बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों, कलाकारों एवं राजनेताओं का यह प्रयास होना चाहिए कि यह प्रथा समाप्त हो।

2. राजनैतिक परिवर्तन

स्वतंत्रता पूर्व समाज में और राजनीति में सभी वर्गों की सक्रियता नहीं थी। अधिकांश लोग अशिक्षा और अज्ञान के कारण अपने पैतृक और जातिगत व्यवसायों तक सीमित थे। समाज की निम्न जातियां सामाजिक स्तर को बदलने में असमर्थ थीं किन्तु स्वतांत्रयोत्तर काल मे नये संविधान के लागू होने से सबको समान अधिकार प्राप्त हो गये। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित हो गया। जाति, लिंग और अन्य आधारों पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का भेद समाप्त प्रायः हो गया। यह यद्यपि एक सैद्धान्तिक परिवर्तन था किन्तु बाद में इसका व्यापक प्रभाव हुआ।

नौकरियों में पंचायतों, नगरपालिकाओं, विधानसभाओं एवं संसद में अनुसूचित जाति, अनूसूचित जनजाति के लिए स्थान सुरक्षित कर दिए गये हैं। पंचवर्षीय योजनाओं में पिछडे वर्गों के विकास की योजनाएं शामिल हुई। इसी प्रकार शिक्षा का प्रसार निम्न वर्गों में किया गया। इंजीनियरिंग तथा मेडिकल कालेजों में इन वर्गों के लिए स्थान सुरक्षित कर उन्हें प्रगति के लिए इस क्षेत्र में उनकी भागीदारी बढ़ी। नेतृत्व की दृष्टि से भी विधान सभाओं में इनकी संख्या 22 प्रतिशत तक बढ़ाई गई और वर्तमान समय में इस पर बहस जारी है। स्वतंत्रता से पूर्व इस प्रकार का कोई विधान उनकी उन्नति के लिए नहीं था। अतः संवैधानिक तथा कानूनी व्यवस्थाओं के कारण निम्न वर्ग के शैक्षिक, व्यावसायिक उन्नति का कारण राजनैतिक परिवर्तन ही था। अधिकारों की दृष्टि से समाज के निम्न वर्ग में राजनीतिक चेतना ने अभूतपूर्व परिवर्तन किया । पहले उच्च वर्ग का वर्चस्व ही समाज में रहता था किन्तु अब सत्ता बहुमत के हाथ में आ गई है।

भारत एक कल्याणकारी राज्य है। इसलिए सभी वर्गों को जीवन की आधारभूत सुविधाएं प्राप्त करने का अधिकार मिला है। भ्रातृ-भवना, समता तथा सामाजिक न्याय जैसी मानवीय भावनाओं के आधार पर निर्मित संविधान ने राजनैतिक दृष्टि से भारतीय जीवन को नई रोशनी तथा नई राहें दिखाइ हैं। राजनीति ने भारतीय जीवन का जनतंत्रीकरण किया है। राजनैतिक व्यक्ति देश के सभी मतदाताओं के हाथों में पहुंच गए हैं। यहां की जनता को राजनीतिज्ञों ने अनेकानेक समूहों में बांट दिया है। क्षेत्रीयता, प्रान्तीयता तथा भाईवाद की राजनीति ने भारतीय जीवन को बहुत प्रभावित किया है। स्वतंत्रता के बाद भाषा के आधार पर राज्यों का गठन किया गया, इससे क्षेत्रीयता की भावना प्रबल हुई और आंचलिक राजनीतिक दलों का वर्चस्व बढ़ा है। तमिलनाडू, आन्ध्रप्रदेश , असम आदि प्रदेश इसके उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

भारतीय राजनीति के अन्तर्विरोधों ने यहां सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। समाज में कई जातियों के संगठित गिरोह हो गये है, जो परस्परता के द्वेष को अधिक बढ़ा रहे है। अपनी जाति को एक बोट बैंक का रूप देकर

दूसरी संजाति पर प्रभुत्व स्थापित करना इसका उद्देश्य हो गया है। नेताओं का समर्थन या विरोध उनकी जाति के आधार पर हो रहा है। सरोहा गांव का यह दलितों का नायक विस्सू यानि बिसेसर शिक्षित युवा होते हुए भी नौकरी नहीं करता उसे सरोहा गांव के परिवेश में रखकर चित्रित किया गया है वह शोषित वर्ग के अभ्युत्थान के लिए गांव व क्षेत्र के हरिजनों में सामाजिक व राजनीतिक चेतना जागृत करने में तत्पर है। आखिर न्याय जिनको मिला उन झूठे और चरित्रहीन नेताओं को जो इंसान का खून करने पर भी पूजे जाते हैं और अखबारनवीश भी उनके खरीदे हुए हैं। यही है आज का न्याय बेकसूर बन्दा गिरफ्तार हो गया ''इसके बाद तीसरी खबर दोस्ती की आड़ में विस्सू की हत्या करने वाला बन्दा गिरफ्तार''।[5]

3. आर्थिक परिवर्तन

सुप्रसिद्ध दार्शनिक कार्ल मार्क्स ने आर्थिक परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन का मुख्य कारक माना है। उनके अनुसार एक समाज का चरित्र इस बात पर आधारित है कि वह अपनी आर्थिक समस्याओं को किस प्रकार हल करता है। स्वातंत्रयोत्तर भारतीय समाज की आर्थिक गतिविधियों में अतितीव्रसक्रियता का समावेश हुआ है, परिणामस्वरूप सामाजिक परिवर्तन की गति तीव्र से तीव्रतर हेा गई है। वैज्ञानिक अविष्कार और औद्योगीकरण एवं शहरीकरण जैसे तत्वों ने भारतीय समाज में परिवर्तन की गति को स्वर प्रदान किया है। यहां आर्थिक परिवर्तन के कारण विघटित समाजिक परिवर्तन का संक्षेप वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

पूंजीवादी व्यवस्था का विकास' आर्थिक परिवर्तन के कारणों में एक प्रमुख कारण है। स्वतंत्रता से पूर्व भारत में कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था का प्राबल्य था। किन्तु विभिन्न औद्योगिक परिवर्तनों एवं अविष्कारों के कारण देश में पूंजीवादी व्यवस्था का उदय हुआ है। स्वाभाविक है कि बड़ी-बड़ी मशीनों एवं कल-कारखानों के लिए बड़ी पूंजी की आवश्यकता होती है अतः आर्थिक उत्पादनों के साधनों पर उन्हीं लोगों का अधिपत्य हो गया जिसके हाथ में विशाल पूंजी का भण्डार था। सामान्य लोग अपने श्रम पर ही अपना पेट भर रहे थे। परिणामतः समाज मे दो वर्गों की स्थिति स्पष्ट दिखायी पड़ती है। पूँजीवादी और श्रमिक वर्ग के शहरों की ओर पलायन में इस व्यवस्था का प्रधान हाथ है।

'जीवन शैली' आर्थिक परिवर्तन का एक मुख्य घटक है। यतायात के साधनों व संचार माध्यमों के परिवर्तन के कारण भारतीय समाज के जीवन स्तर में परिवर्तन घटित हुआ। मोटर साइकिल, स्कूटर, रेडियो, टेलीविजन जैसे साधनों को अपनाकर जनता ने अपने जीवन स्तर तथा जीवन-शैली में गुणात्मक परिवर्तन किया है। स्त्रियों के पहनावे में भी आमूलचूल परिवर्तन लक्षित होते हैं। गांव में भी भोजन के स्तर एवं उसकी शैली में परिवर्तन हुए हैं।

औद्योगिकीकरण आर्थिक परिवर्तन का एक मुख्य घटक है। देश में जैसे-जैसे उद्योग तथा व्यापार का विकास होता गया बडे-बडे शहर इसके केन्द्र बनते गये। अतः शहरो की तरफ लोग जीविका की खोज में भागने लगे। औद्योगीकरण के कारण वर्ग संघर्ष एवं अशान्ति भी बढ़ी है। पहले श्रमिक वर्ग असंगठित तथा अशिक्षित था, किन्तु अब वह अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकता है। आज वह संगठित है वह अपना शोषण नहीं देख सकता । हडतालों और तालाबन्दियों से जहां कार्य दिवसों की हानि होती है वहीं शहरों में रहने वाले लोगों का जीवन प्रभावित होता है।

4- शैक्षिक परिवर्तन

भारत में प्रारंभिक शिक्षा का विकास एवं प्रसार स्वतंत्रता के बाद हुआ है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक 6 से 11 वर्ष के 60 प्रतिशत

बालक ही स्कूल जाते थे, यह प्रतिशत तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक बढकर 69 प्रतिशत हो गया। 1966 में 6 से 11 वर्ष के 90 प्रतिशत बच्चे स्कूलों में भर्ती किए गये इस प्रकार बालकों की संख्या मे वृद्धि हुई किन्तु बलिकाएं अब भी इनसे पीछे रहीं। वर्तमान शिक्षा पद्धति ने सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसकी पहली विशेषता यह है कि यह धर्मनि पेक्ष। पहले जहां पर उच्च वर्ग का अधिकार था, वहां अब सर्वसामान्य का हक है। निम्न एवं दुर्बल वर्ग के बच्चों को छात्रवृत्ति तथा अन्य सुविधाएं प्रदान कर शिक्षा का व्यापक एवं सार्थक बनाया जा रहा है। शैक्षिक परिवर्तन का सर्वाधिक उल्लेखनीय पक्ष है- स्त्री शिक्षा। स्वतंत्रता से पूर्व स्त्री शिक्षा का अर्थ होता था धार्मिक एवं नैतिक ग्रन्थों का अध्ययन किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात स्त्री शिक्षा के स्वरूप में आमूल परिवर्तन हुए हैं। ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों में आज स्त्री-पुरुष दोनों समान हैं। वैज्ञानिक तकनीकी, शिक्षा में महिलाओं ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। प्रशासनिक सेवाओं में उनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। आज सेना के तीनों अंगों में उनकी भर्ती की जा रही है और महिलाएं इस चुनौती को स्वीकार करने में समर्थ हुई हैं।

शिक्षा के द्वारा समाजिक परिवर्तन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यद्यपि हमने पहले भी अधिक उन्नति की है किन्तु लक्ष्य अभी दूर है। भारतीय शिक्षित युवती की दुविधा ही उस प्रियंका के उपन्यासों की वस्तु है। इस दुविधा को लेखिका ने बहुत से कोणों से परखकर देखा है। सदियों से शोषण की परम्परा एवं आत्मदलन के इतिहास के पश्चात् आधुनिक काल में शिक्षित नारी स्वयं को अनेक संदर्भों में तौल-परख कर देख रही है। नारी जीवन व समय के साथ बदलते मूल्यों को देखा जा सकता है।

आज के नारी जीवन में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जो परिवर्तन आये हैं, जिन नये मूल्यों को आत्मसात करने और पुराने मूल्यों को अस्वीकार करने के लिए आज की नारी बिना सोचे समझे अपनाने के लिए व्याकुल हो रही है, यही उस प्रियंका की रचानाओं में मुखरित हुआ है।[6]

5 सांस्कृतिक परिवर्तन

संस्कृति वह उद्देश्यमूलक व्यवस्था है, जो मनुष्य की समस्त बाह्य एवं आन्तरिक क्रियाओं का नियामक होती है। सांस्कृतिक परिवर्तन के निम्न घटक इस प्रकार से हैं-

धामिर्क जीवन में परिवर्तन, सांस्कृतिक परिवर्तन का एक मुख्य घटक है। वर्तमान में धर्म का कर्मकाण्ड पर आधारित रूप परिवर्तित हो गया है। कट्टरता धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। आज धर्म को अन्धपक्ष से स्वीकार करने की अपेक्षा तर्क एवं विश्लेषण से उसे समझने के प्रयास किये जाते हैं। अतः हरिजनों का मन्दिर में प्रवेश हुआ है, छुआ-छूत एवं अस्पृश्यता की भावना का लोप हो रहा है। कर्ममाण्ड की जटिलता सरल रूप धारण कर रही है। विवाह, यज्ञ आदि संस्कारों के सम्पन्न होने में कई दिन लगते थे, वहां चन्द घण्टो में उन्हें पूरा किया जाता है।

पश्चिमीकरण भी संस्कृति परिवर्तन का एक कारक है। भारतीय सांस्कृतिक जीवन पर पाश्चात्य प्रभाव अधिक गहराई तक पड़ा है। इसे पश्चिमीकरण कहा गया है। पश्चिमीकरण शब्द ब्रिटिश राज्य के डेढ़ सौ वर्षों के शासन के परिणामस्वरूप भारतीय समाज और संस्कृतिक से प्रभावित होकर ही हमारे यहां सुधार आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ और प्रार्थना समाज, ब्रह्म समाज, आर्य समाज जैसी संस्थाओं का उदय हुआ।

आधुनिकीकरण से भिन्न पश्चिमीकरण शब्द नैतिक शब्द से तटस्थ है उसका प्रयोग अच्छे या बुरे होने को नहीं सूचित करता, जबकि आधुनिकीकरण साधारणतः इस अर्थ में प्रयुक्त होता है कि वह अच्छा है। पश्चिमीकरण के कुछ

तत्व सामान्य होने पर भी प्रत्येक यूरोपीय देश और साथ ही अमरीका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड एक सामान्य संस्कृति के विशेष रूपान्तर के प्रतिनिधि हैं और विभिन्न देशों के बीच महत्वपूर्ण अन्तर पाए जाते हैं। भारत में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के विश्लेषण से स्पष्ट पश्चिमीकरण का अंग्रेज आदर्श ही सबसे महत्वूर्ण है। यद्यपि 1947 से अमरीकी और रूसी आदर्श भी सार्थक होते जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहां पश्चिमीकरण ने ऐसी शक्तियों को उत्पन्न किया है जो एक-दूसरे के विपरीत पड़ती हैं। यह शायद उसके परिवर्ती चरणों की अपेक्षा प्रारम्भिक चरणों में अधिक दिखाई पड़ता है।

नागरीकरण की प्रकिया को देहाती छोर से देखने पर हैरोल्ड गोल्ड ने कहा कि उत्तर प्रदेश में ब्राहमण और राजपूत जैसी ऊँची जातियों का ही पश्चिमीकरण हो रहा है जिसमें नगरीकरण भी सम्मिलित है और निम्न जातियों के पास आधुनिक जगत में प्रवेश के लिए न तो साधन हैं न प्रेरणा। वे गरीब हैं अशिक्षित हैं और शहरों में उनकी रिश्तेदारियां भी नहीं हैं और इन सबसे उनकी गतिशीलता में रूकावट होती है।7

राधाकृष्णन ने लिखा है कि- हिन्दू धर्म की सहिष्णुता उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में भी बनी रही न केवल राजाराममोहन राय और गांधी जैसे शिक्षित और पश्चिमीकृत भारतीयों ने इसामसीह के व्यक्तित्व और शिक्षाओं की गहरी सराहना की बल्कि बंगाल के निरक्षर ब्राहमण सन्त रामकृष्ण ने परानुभूति के एक अनोखे प्रयास द्वारा भीतर से यह अनुभव प्राप्त किया कि विभिन्न धर्मों को अपनाने का क्या प्रभाव होता है।[8]

सन् 1838 में ट्रेवेल्यान ने लिखा था कि - हमारे साहित्य द्वारा हमसे परिचित होने के कारण भारतीय तरूण वर्ग प्रायः हमें विदेशी नहीं समझता। वे हमारे महापुरुष के बारे में वैसे ही उत्साह से चर्चा करते हैं जैसे हम करते हैं हमारी ही तरह शिक्षा पाकर, उन्हीं विषयों में रूचि लेकर और हमारे साथ एक ही कार्यों में संलग्न होकर वे हिन्दू से अधिक अंग्रेज हो जाते हैं। [9]

भारत में पश्चिमीकरण ने भारतीयों में अपने पारस्परिक समाज को बदलने की प्रेरणा उत्पन्न की, किन्तु समय के साथ एक अन्य प्रबल, वास्तव में अधिक मूलभूत प्रेरणा स्वतंत्रता की प्रेरणा के सामने उसका स्थान गौंण हो गया। धर्म, जाति, भाषा और प्रदेश के आधार पर खंडित देश में तीव्रतर राष्ट्रीय आत्मचेतना में आवश्यक रूप से सामाजिक ढांचे के उच्चतम् से लगाकर निम्नतम् तक प्रत्येक स्तर तीव्रतर आत्मचिंतन में निहित है। विदेशी और शक्तिशाली शासक की उपस्थिति जिसमें सम्भवतः समाज के भीतर गहरे विभाजनों का लाभ उठाया, इन सबके परिणामस्वरूप महाद्वीपों का भारत और पाकिस्तान में बंटवारा हुआ, स्वाधीन भारत अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए ही पारस्परिक और जन्मजात आवश्यकताओं, विशेषकर अस्पृश्यता को शीघ्रता से मिटाने की नीति अपनाने को बाध्य है।

आदर्शों की व्यक्तिवादिता भी सांस्कृतिक परिवर्तन का घटक है। प्रौद्योगिकी विकास के कारण व्यक्ति की प्रतिष्ठा उसकी जाति गोत्र पर आधारित न होकर उसके गुणों के आधार पर हुई है। अतः प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर इन गुणों का विकास कर लेना चाहता है, जिससे उसे सामाजिक प्रतिष्ठा और पहचान मिल सके।

6- नैतिक मानदण्डों में परिवर्तन

पहले लोग ईश्वर या धर्म के भय से अधिक नैतिक नियमों का पालन करते थे। स्वातंत्रयोत्तर काल में नैतिक नियमों के पालन में शैथिल्य आया है। राजनीतिक जीवन सिद्धान्त एवं मर्यादा से हीन हो गया है। अतः जन सामान्य भी नैतिक मानदण्डो के पालन से विमुख हो रहा है। व्यापारी सामानों में गिरावट करते हैं, दवाएं नकली

बन रही हैं। कालाबाजारी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी का बोल-बाला हो गया है। भाई-भतीजावाद आज की सामान्य दिनचर्या हो गई है। नैतिकता के पतन में फिल्मों में अपना अपूर्व योगदान दिया है। हिंसा, शारीरिक नग्नता तथा यौनाचार आदि के प्रदर्शन द्वारा फिल्में भारतीय समाज में नैतिकता पर कुठाराघात, करती दिखाई दे रही है।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है अतः सामाजिक परिवर्तनों का स्पष्ट भाव समकालीन साहित्य पर स्पष्ट दिखाई देता है। विशेषतया उपन्यास साहित्य उक्त सभी विकृतियों और परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील हैं। सामाजिक विकृतियों पर व्यंगात्मक प्रहार, राजनीतिक छल-कपट का पर्दाफाश, धामिर्क रूढ़ियों की व्यर्थता, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में परिवर्तन, नारी के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण आदि आधुनिक उपन्यासों में कलात्मकता के साथ चित्रित किए गये हैं।

सामाजिक परिवर्तन के प्रति महिला उपन्यासकार सजग एवं संवदेनशील हैं उनकी कृतियों में नारी जीवन के भोगे हुए यथार्थ की छाप स्पष्ट है। साथ ही स्त्री पुरुष सम्बन्धों में समानता, वैवाहिक स्थितियों की बिडम्बनाएं, पति-पत्नी के तनाव से सन्तान पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों की चर्चा महिला उपन्यास लेखिकाओं की कृतियों में अभिनिवेशपूर्वक हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1- किंग्सलें डेविड- मानव समाज-पृ. 622 ।
2- एम. आर. एन. श्री वास्तव -आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन पृ.192 ।
3- एस. आर. गुप्ता- आधुनिक परिवार समस्या व संक्रमण- वक्तव्य- कृष्णा सोबती पृ. 15 ।
4- एस. आर. गुप्ता- आधुनिक परिवार समस्यां व संक्रमण-वक्तव्य कमलेश बक्शी
5- मन्नू भंडारी- महाभोज- पृ.145 ।
6- लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय- द्वितीय युद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ.191 ।
7- एम. एल. वैशम- आश्चर्यकारी भारत।
8- राधाकृष्णन-पूर्वी धर्म और पश्चिमी चिंतन-पृ. 312 ।
9. सी.ई. ट्रेवेल्यान- भारत के लोगों की शिक्षा पृ. 190 ।